National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025(1(60): 90-93
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा
वरिष्ठ अध्यापक , संस्कृत,
दिल्ली सरकार

Correspondence:
डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा
वरिष्ठ अध्यापक , संस्कृत,
दिल्ली सरकार

पाणिनि अष्टाध्यायी की गुण विवेचना

डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा

महर्षि पाणिनि का विश्व प्रसिद्ध महनीय ग्रंथ अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण के नियमन में सर्वोच्च है। लौकिक और वैदिक दोनों तरह के शब्दार्थ बोधन में अव्याहत गति से पाणिनीय व्याकरण शास्त्र की उल्लेऽनीय भूमिका यथावत विद्यमान है। अष्टाध्यायी की अर्थबोधन की महत्ता किसी वेद विशेष तक सीमित न रहकर प्रत्युत समस्त वेद संहिताओं के रहस्यार्थ प्रकटन में परम सहायक है। तभी तो महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाध्यायी को **"सर्ववेद पारिषद शास्त्र"**[१] कहा है।

महर्षि पाणिनि संस्कृत व्याकरण परम्परा के आदि आचार्य नहीं हैं। वे व्याकरण परम्परा के उत्कर्ष शिऽरों में अन्यतम हैं। उनके भाषिक रहस्यों के नियमन के पीछे समृद्ध भाषा के अस्तित्व की सुदीर्घ परम्परा के प्रौढ़ विमर्श का बहुत ही महनीय स्वरूप विद्यमान था। भाषिक तत्वों की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का समग्र व्यापार अर्थात् भाषिक नियमों के ज्ञेय स्वरुप के समृद्ध समाधानात्मक शास्त्र व्याकरण शास्त्र नाम से सुधी सम्प्रदाय में समाहत है।

अष्टाध्यायी का कलेवर आठ अध्यायों तथा प्रत्येक अध्याय में चार -चार पादों के होने से बत्तीस पादों से अलंकृत है। **"अष्टाध्यायी"**[२] में सूत्रों की संख्या 3861 है। अष्टाध्यायी का परिमाण एक सहस्र अनुष्टुप्छन्द के श्लोकों वाला प्रत्येक पाद में सूत्रों का प्रणयन बहुत ही वैज्ञानिकता से किया गया है। इसी वैज्ञानिक क्रम का वैशिष्ठ्य है कि 'सूत्रों का अधिकार' और 'पदों की अनुवृत्ति' 'उत्तर सूत्रों' में जाती है।

अष्टाध्यायी के प्रथम और द्वितीय अध्याय में संज्ञा और परिभाषा सूत्रों की प्रस्तुति है। शास्त्र विशेष के अध्ययन में उन संज्ञाओं और परिभाषाओं के परिचय के बिना उस शास्त्र में प्रवेश असंभव है। संक्षिप्तता के लिए अनेक उपाय हैं। व्याकरणात्मक नियमावबोधन हेतु संज्ञा और परिभाषा की आवश्यकता होती है। प्रथम और द्वितीय अध्याय में संज्ञाप्रकरण के अंतगर्त प्रत्याहार, वृद्धि, गुण, संयोग, अनुनासिक, आत्मनेपद, परस्मैपद, कारक, विभक्ति, समास आदि है। कारकतत्त्व के अध्ययन से वाक्यार्थ का अवबोधन सुगमता से होता है। यथा ओदनं पचति प्रस्तुत वाक्य में **"ओदनपदार्थकीकर्म संज्ञा कर्तुरीप्सिततमंकर्म"**[३] सूत्र से है। सूत्रार्थ को समझने से पहले यह अवश्य ज्ञेय है कि धात्वर्थ फल और व्यापार हैं। फल (क्रिया से उत्पन्न परिणाम) का आश्रय कर्म और व्यापार (क्रिया/चेष्टा) का आश्रय कर्ता होता है। अतः सूत्रार्थ होगा कर्ता में रहने वाली क्रिया से उत्पन्न होने वाले फल के आश्रय रूप से जो विवक्षित है उसकी कर्म संज्ञा होती है। यहां पर ध्यान देने योग्य विचार यह है कि कर्ता और क्रिया के ज्ञान होने पर ही ही उस क्रिया से उत्पन्न फल के आश्रय का ज्ञान सम्भव है और तभी उसकी कर्म संज्ञा निष्पन्न होगी। अभी जिस ओदन की कर्म संज्ञा की जा रही है वह तो अभी बना ही नहीं है। क्रियाजन्य फल के आश्रयरुप ओदन को कैसे माना जाए? अतः यह स्पष्ट है कि पाणिनि को बुद्धि में स्थित संस्कार रूप ओदन की कर्म संज्ञा अभिप्रेत है।

द्वितीय अध्याय में समाससंज्ञा प्रकरण में वृत्ति का एकभेद समास है। **"परार्थाभिधानं वृत्तिः"**[४] कृत, तद्धित, समास, एक शेष और सनादयन्त हैं। सभी वृत्तियों में एकार्थी भाव रहता है। परन्तु समास में व्यपेक्षाभाव सामर्थ्य रहता परस्पर की अपेक्षा या आकांक्षा आदि से सम्बद्ध परस्पर अर्थबोधन में समर्थ

व्यपेक्षाभाव कहलाता है। अव्यय लक्षण के साथ नित्य निर्विकार शब्द ब्रह्म का लक्षण भी सम्प्राप्त है। अनेकता में एकत्व की प्रवृत्ति निमित्तिका जाति का भी अवबोधन होता है।

तृतीय अध्याय के **"प्रत्ययः"**[५] प्रथम सूत्र का अधिकार पंचम **अध्याय** की परिसममाप्ति तक है। तृतीय अध्याय में धातु (प्रकृति) से परे तिघ् और कृत् प्रत्ययों का निदर्शन है। चतुर्थ अध्याय और पंचम अध्याय में प्रातिपादिक (प्रकृति) के बाद जुड़ने वाले प्रत्ययों में स्त्री प्रत्यय और तद्धित प्रत्ययों की चर्चा है। तीसरे, चैथे और पाँचवें अध्यायों में सब प्रकार के प्रत्ययों का विधान है। तीसरे अध्याय में धातुओं में प्रत्यय लगाकर कृदंत शब्दों का निर्वचन है और चैथे तथा पाँचवे अध्यायों में संज्ञा शब्दों में प्रत्यय जोड़कर बने नए संज्ञा शब्दों का विस्तृत व्युत्पत्तिक्रम बताया गया है। ये प्रत्यय जिन अर्थ विषयों को प्रकट करते हैं उन्हें व्याकरण की परिभाषा में वृत्ति कहते हैं, जैसे वर्षा में होनेवाले इंद्रधनु को वार्षिक इंद्रधनु कहेंगे। वर्षा में होने वाले इस विशेष अर्थ को प्रकट करने वाला **"इक"** प्रत्यय तद्धित प्रत्यय है। प्रकृति से परे प्रत्ययों का विधान दार्शनिक परम्परा का अनुमोदन है। प्रत्यय (जेय) शब्दब्रह्म है। वह सर्वथा प्रकृति से परे है।

छठे, सातवें और आठवें अध्यायों में उन्न परिवर्तनों का उल्लेख है जो शब्द के अक्षरों में होते हैं। ये परिवर्तन या तो मूल शब्द में जुड़नेवाले प्रत्ययों के कारण या संधि के कारण होते हैं। द्वित्व, संप्रसारण, संधि, स्वर, आगम, लोप, दीर्घ आदि के विधायक सूत्र छठे अध्याय में आए हैं। षष्ठ अध्याय में द्वित्व सन्धि और वैदिकस्वर विधायक सूत्रों का संकलन हैं। सन्धि कार्य में एक लौकिक व्यवहार के दर्शन होते हैं। सन्धि अर्थात् मित्राता द्य मिलकर पार जाने की भावना। सन्धि कार्य में पूर्व और पर दोनों ही वर्ण मिल कर अपने स्वरूप का त्याग कर नूतन स्वरुप धारण करते हैं। उदाहरणार्थ गण + ईश-गणेश यहां अ और ई ने अपने स्वरूप का त्याग कर ए रूप को अपनाया हैं।

इस अध्याय में आगे उदात्त अनुदात और स्वरित स्वरों की चर्चा प्रधानता से की गई है। स्वर प्रक्रिया सम्बन्ध वैदिक संस्कृत से है। षष्ठ अध्याय के चतुर्थ पाद में अंगाधिकार प्रारम्भ होकर सप्तम अध्याय की परिसममाप्ति तक जाता है। अंगाधिकार नामक एक विशिष्ट प्रकरण है जिसमें उन परिवर्तनों का वर्णन है, जो प्रत्यय के कारण मूल शब्दों में या मूल शब्द के कारण प्रत्यय में होते हैं। ये परिवर्तन भी दीर्घ, हस्व, लोप, आगम, आदेश, गुण, वृद्धि आदि के विधान के रूप में ही दे जाते हैं। अष्टम अध्याय में, वाक्यगत शब्दों के द्वित्वविधान, प्लुतविधान एवं षत्व और णत्वविधान का विशेषतः उपदेश है।

अष्टम अध्याय में भी द्वित्व-संधि, षत्व, जशत्व, कुत्व, चत्व आदि विविध कार्यों का निदर्शन है। इसी अध्याय में पदाधिका एवं तिइन्त स्वर का भी निरूपण है सब के। अंत में महर्षि पाणिनि ने **"अ अ"** सूत्र से **"विवृत अ"** के स्थान पर संवृत 'अ' का विधान किया है। अ परमात्मा का वाचक शब्द परमात्मा का वाचक है। अ शब्द का दो बार उच्चारण परम मंगल की सूचना है तथा पूर्व के समस्त प्रकरणों को उद्देश्य करके अ शब्दार्थ के विधेयत्व का भी संसूचक है। इस तरह संपूर्ण व्याकरण शास्त्र शब्दब्रह्म स्वरूप परमात्मा की भी सिद्धि है। आचार्य भर्तृहरि ने भी कहा है।

तस्माद्यः शब्दसंस्कारः सा सिद्धिःपरमात्मनः
तस्य प्रवृत्तितत्त्वज्ञः स ब्रह्मामृतमश्नुते।।[६]

अष्टाध्यायी के कतिपय सूत्रात्मक नियमों के चमत्कारिक प्रदर्शन उल्लेऽनीय है।यथा बाध्यबाधकभाव की सदृष्टान्त प्रस्तुति। सूत्रार्थ इस प्रयोग में सूत्र + अर्थ इस स्थिति में **"आद्गुणः"**[७] से गुण तथा **"अकः सवर्णे दीर्घः"**[८] से दीर्घ कार्य प्राप्त है। अब इस अवस्था में गुण कार्य हो या फिर दीर्घ। इस तरह की जिज्ञासा के समाधान के लिए आचार्यपाणिनि ने **"विप्रतिषेधे परं कार्यम्"**[९] सूत्र का नियमन किया है। अष्टाध्यायी में गुणविधायक सूत्र से दीर्घ विधायक सूत्र परत्व के कारण स्वीकार्य है। इसी तरह **लक्ष्मीशः** के प्रयोग में **"इकोयणचि"**[१०] से होने वाले यण कार्य को दीर्घविधायक सूत्र बाधित कर देता है।

आचार्यपाणिनि ने अष्टाध्यायी को दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय से लेकर आठवें अध्याय के प्रथम पाद तक को **सपादसप्ताध्यायी** एवं शेष तीन पादों को **त्रैपादिक** कहा जाता है। **"पूर्वत्रासिद्धम्"**[११] सूत्र भी बाध्यबाधक भाव के निर्णय में सहायक होता है। सपादसप्ताध्यायी मे विवेचित नियमों की तुलना में त्रिपादी में वर्णित नियम असिद्ध हैं। जैसे मनोरथः इस प्रयोग मनस+रथः इस स्थिति में सकार को **"स सजुषोरुः"**[१२] सूत्र से रु आदेश होने पर मनस+रथः इस स्थिति में **"हशिच"**[१३] सूत्र से रु के स्थान पर उकार प्राप्त होता है और **"रोरि"**[१४] सूत्र से रेफ का लोप। अब प्रश्न उठता है कि यहां पर कौनसा नियम काम करेगा? ष्विप्रतिषेधे परं कार्यम् नियम से परत्व का विचार करते हुए रेफ के लोप का निर्णय मान्य हो सकता है। क्योंकि रोरिश सूत्र **"हशिच"** के बाद आता है। परंतु **"पूर्वत्रासिद्धम्"** सूत्र ने उच्च न्यायालय की तरह विप्रतिषेधे परं कार्यम् के विपरीत निर्णय दिया है।क्योंकि सवा सात अध्याय में पठित हशि च' सूत्र के प्रति त्रिपादी में पठित "रोरि" सूत्र असिद्ध माना जाता है। इसीलिए पूर्व निर्णय को निरस्त कर हशि चश् सूत्र से रु के स्थान पर उकार आदेश हो गया है और **"आद्गुणः"** गुण होकर मनोरथ शब्द निष्पन्न होता है।

पाणिनीय व्याकरण में सर्वोच्च न्यायालय सदृश निर्णायक क्षमता वाला नियम है **"असिद्धबहिरंगमन्तरंगे"**[१५] है। उदाहरणार्थ

"सुद्ध्युपास्य में श्संयोगान्तस्य लोपः"[१६] सेयकार का लोप प्राप्त है। परन्तु उपरोक्त परिभाषा ने अन्तरंग लोपशास्त्र की कर्तव्यता में बहिरंग यण शास्त्र को असिद्ध कर दिया है। यद्यपि पूर्वत्रासिद्धम् से विपरीत यह निर्णय है, क्योंकि यण् शास्त्र सपाद सप्त अध्याय में है। उसके प्रति त्रौपादिक लोप शास्त्र असिद्ध है। अन्तरंग के निर्णय का सम्मान पूर्वत्रासिद्धम् करना पड़ता है। भाष्यकार पतञ्जलि ने कहा है- **"यणः प्रतिषेधो वाच्यः न वा झलो लोपाद् बहिरंगलक्षणत्वादिति"**[१७] यह परिभाषा **"वाहऊठ्"**[१८] सूत्र के ऊठ् ग्रहण के कारण महर्षि को अभिप्रेत ज्ञात होता है।

देवान् नमस्करोति में **"नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालं"**[१९] सूत्र से चतुर्थी और **"कर्तुरीप्सिततमं कर्म"**[२०] सूत्र से कर्म कारक के कारण **"कर्मणि द्वितीया"**[२१] सूत्र से द्वितीया विभक्ति प्राप्त है।
"विप्रतिषेधे परं कार्यम्"[२२] नियम से चतुर्थी होनी चाहिए। परन्तु **"उपपदविभक्तेः" "कारकविभक्ति र्वलियसी"**[२३] परिभाषा ने उपपद विभक्ति को बाधित कर कारकविभक्ति अर्थात् द्वितीया विभक्ति का प्रबलता से नियमन कर दिया है।

पाणिनीय व्याकरण का हृदय है स्फोटवाद। स्फोटवाद मतलव शब्दनित्यत्ववाद। यद्यपि स्फोटवाद की अष्टाध्यायी में प्रत्यक्षतः चर्चा नहीं है तथापि अष्टाध्यायी के अनेक अंशों से यह सिद्धान्त प्रकट होता है। एक उल्लेऽनीय अंश **"अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपादिकम्"**[२४] है। प्रातिपादिक को परिभाषित करते हुए धातु भिन्न प्रत्यय भिन्न प्रत्ययान्त भिन्न जो अर्थ बोधक है उसे प्रातिपादिक संज्ञा कहते हैं। यहां अर्थबोधक शब्द से तात्पर्य है अर्थ निरुपित वृतिरुप सम्बन्ध वाला शब्द। यथा **"कृष्ण"** शब्द धातु आदि से भिन्न होते हुए भी वसुदेवापत्यरूप अर्थ से निरूपित शक्ति (वृति) वाला है। अतः कृष्ण की प्रातिपादिक संज्ञा हुई है। विचारणीय है कि वसुदेवापत्य रूप अर्थ से निरूपित शक्तिक् (सम्बन्ध) का आश्रय कौन है? यदि क,ऋ,ष,ण,अ इन पांचों वर्गों से प्रत्येक वर्ण कृष्ण अर्थ का आश्रय है तो यह पक्ष सम्भव नहीं है। फिर पांच वर्षों से पांच बार कृष्ण अर्थ का बोध होने लगेगा, जोकि अनुभव जन्य नहीं है। उच्चरित होकर नष्ट होना वर्णों का धर्म है, ऐसी स्थिति में वर्गों का समुदाय कैसे बनेगा? अतः समुदाय भी शक्तिक् का आश्रय नहीं हो सकता है। अतः इन ककार आदि ध्वनियों से अभिव्यक्त होने वाली कोई एक नित्य वस्तु होनी चाहिए। वही शक्तिक् का आश्रय है। यह औपाधिक चिद्रूप आत्मा है जो स्फोट शब्द से व्याकरणों द्वारा व्यपदेश्य है। यही अनौपाधिक रूप परा शब्द से ज्ञात होता है।यही **"वाग्वैब्रह्म"**[२५] श्रुति का संदेश भी है। भर्तृहरि ने भी कहा है- जो भेद क्रम आदि से रहित, सूक्ष्म, अविनाशिनी केवल स्वप्रकाशरूप ज्योति, जो कि सृष्टि में सर्वत्रा व्याप्त है, उसे पश्यन्ती कहते हैं।

अविभागातु पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमः।
स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी।।[२६]

व्याकरण के अनुसार सारे सुखों का मूल, समस्त विवादों और दुखों का समाधान समन्वय है। प्रत्येक शब्द में, प्रत्येक अणु और परमाणु में स्फोट और ध्वनि का समन्वय है, प्रकृति और प्रत्यय का समन्वय है। इसी समन्वय के आधार पर प्रत्येक अर्थ, प्रत्येक सृष्टि का कार्य होता है। जब भी दोनों में से एक भी उपेक्षित होगा, वहीं से वाद-विवाद, विरोध और संघर्ष प्रारंभ होता है। इसीलिए व्याकरण की अहम्मान्यता है- **न केवला प्रकृतिः प्रयोक्त व्या नापि केवलः प्रत्ययः।** न केवल प्रकृतिवाद को मुख्यता देनी चाहिए और न ही केवल प्रत्ययवाद को प्रमुखता देनी चाहिए। मात्र भौतिकवाद का व्यवहार या फिर मात्र अध्यात्मवाद का प्रयोग और न मात्र ज्ञानमार्ग का या केवल कर्ममार्ग का प्रयोग नितान्त अव्यावहारिक है। **"न लोकाद् भियते व्याकरणम्"** पतञ्जलि का यह महावचन पदे-पदे व्याकरण की प्रासंगिकता का निदर्शन है। प्रत्येक वाद, सिद्धान्त और मन्तव्य के प्रयोग में व्याकरण के समन्वयवाद की संकल्पना समाज के लिए महत्वपूर्ण योगदान है।

पाणिनीय व्याकरण नीरस होते हुए सबसे अधिक सरस है। इसमें निर्लेपता, निष्पक्षता और सत्यता की त्रिवेणी है। तभी तो अप्रिय होते हुए भी सर्वप्रिय है। निवार्य होते हुए भी अनिवार्य है। व्याकरण होते भी दर्शन और साहित्य है। ध्वनि होते हुए भी स्फोट है। अभिधा होते हुए भी व्य×ा्जना है। द्वन्द्व (विवाद) में समाहार (एकत्व) सिखाता है। व्यपेक्षाभाव (परस्परनिर्भरता) समास के साथ एकार्थीभाव (एक उद्देश्यता) समास सिखाता है। विग्रह में सन्धि सिखाता है। आकृति के साथ द्रव्य को पदार्थ मानना सिखाता है। भौतिकवाद के साथ ही आत्मवाद और ब्रह्मवाद की शिक्षा देता है।

व्याकरण शब्द और अर्थ दोनों को ब्रह्म मानता है। शब्दतत्व के संरक्षण हेतु अर्थतत्व है। दोनों का समन्वय करना सीखना ही ज्ञान और विज्ञान है। तभी तो कहा है महर्षि पतञ्जलि ने – **"शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।"**

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. अष्टाध्यायी
2. महाभाष्य
3. वाक्यपदीयम्
4. परिभाषेन्दुशेऽरपरिभाषा
5. ऐतरेय ब्राहमण, शतपथ ब्राहमण
6. वाक्यपदीयम्

संदर्भ ग्रन्थ:

१ "सर्ववेदपारिषदं हीदं शास्त्रम, तत्र नैकः पन्थाः शक्य आस्थातुम् "
महाभाष्य 2/1/58

२ पाणिनीयः अष्टाध्यायीसूत्रपाठः श्रीरामलालकपूरट्रस्ट रेवली सोनीपत

३ अष्टाध्यायी 1/4/49

४ महाभाष्य 2/1/1

५ अष्टाध्यायी 3/1/1

६ वाक्यपदीयम् 1/132

७ अष्टाध्यायी 6/1/84

८ अष्टाध्यायी 6/1/97

९ अष्टाध्यायी 1/4/2

१० अष्टाध्यायी 6/1/74

११ अष्टाध्यायी 8/2/1

१२ अष्टाध्यायी 8/2/66

१३ अष्टाध्यायी 6/1/110

१४ अष्टाध्यायी 8/3/14

१५ परिभाषेन्दुशेऽरपरिभाषा 51

१६ अष्टाध्यायी 8/2/33

१७ परिभाषेन्दुशेऽरपरिभाषा

१८ अष्टाध्यायी 6/4/132

१९ अष्टाध्यायी 2/3/16

२० अष्टाध्यायी 1/4/49

२१ अष्टाध्यायी 2/3/2

२२ अष्टाध्यायी 1/4/2

२३ परिभाषेन्दुशेऽरपरिभाषा 103

२४ अष्टाध्यायी 1/2/45

२५ ऐतरेय ब्राह्मण 6/3, शतपथ ब्राह्मण 2/1/4/10

२६ वाक्यपदीयम् 1/144